विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२५ • कार्तिक पूर्णिमा [शक] • दि. ११-११-१९८१ • अंक ५

लोक-चक्र और धर्म-चक्र

२५/२६ सदियों पूर्व आषाढ़ पूर्णिमाके दिन भगवान गौतम बुद्धने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। लोकचक्रमें पिसी जाती हुई जनता धर्मचक्रसे वंचित हो गयी थी। धर्मके नाम पर जो कुछ प्रचलित था वह अधिकांशतः लोकचक्र ही लोकचक्र था। विवेकहीन रूढ़ियों और परंपराओंकी लकीरों पर अंधे फकीरोंकी तरह चलने वाले लोग धर्मका सत्य स्वरूप भूल बैठे थे। यथार्थ ज्ञान-दर्शनसे वंचित हो चुके थे। इसीलिए नानाप्रकारके दुखोंमें उलझे हुए थे।

दुनियामें जब कोई व्यक्ति बुद्ध बनता है तो वह यथार्थ ज्ञान-दर्शन ही करता है। परमार्थ सत्यके स्वयं दर्शन करना ही सम्यक सम्बोधि है। समस्त मिथ्यादृष्टियोंसे, भ्रम-भ्रांतियोंसे, माया-मरीचिका-ओंसे, धोखे-विपर्य्यायोंसे बाहर निकलकर आर्यसत्योंका स्वयं साक्षात्कार कर लेना ही विमुक्ति है। जब कोई व्यक्ति इस प्रकार स्वयं आर्य-सत्योंका दर्शन करके औरोंको भी उनका दर्शन कर सकनेके लिए मार्ग-निर्देशन करता है तो इसी को धर्मचक्र-प्रवर्तन करना कहते हैं।

यह आर्य-सत्य क्या है? आर्य-सत्य प्रकृतिकी वह सच्चाइयां हैं जिन्हे कि हम अन्तर्मुखी होकर स्वानुभूतियोंके बल पर स्वयं देख समझ लेते हैं और आर्य बन जाते हैं, याने पवित्र बन जाते हैं निर्मल-हृदय बन जाते हैं। आओ, देखें यह कौन सी सच्चाइयाँ हैं जो कि हमें मिथ्या भ्रांतियोंसे दूर करती हैं और आर्य बननेमें सहायक होती हैं। ये हैं जीवन और जगतकी ठोस सच्चाइयाँ, यथार्थ सच्चाइयाँ; थोथी कपोल-कल्पनाओंसे परे, निकम्मी निस्सार अटकल-पच्चियोंसे दूर। यह सच्चाइयां चार प्रकारकी होती हैं।

हम भलीभांति जान लेते हैं कि – १) यह दुख है। २) यह दुखका मूलभूत कारण है। ३) यह दुखका निवारण है। ४) यह दुख निवारणका तरीका है।

अन्य शब्दोंमें कहें तो हम भली भांति जान लेते हैं कि यह हमारा रोग है, यह रोगका निदान है, यह रोगका निवारण है और यह है निवारणकी दवा। यह मैल है, यह मैलका चिपकना है, यह मैलका छूटना है और यह है मैल छुड़ानेकी साबुन। यह आग है, यह आगका जलावन है, यह आगका बुझना है और यह है उसका उपाय।

ध म्म वा णी

ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतु तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महासमणो॥

अपदान १/३/२८६.

जो भी स्थितियां कारणोंसे उत्पन्न होती हैं, तथागतने उनके उत्पत्ति-कारण बताए हैं और साथ ही उनका निरोध भी। यही उस महाश्रमण भगवान बुद्धका सिद्धान्त है, मार्ग है।

यह विषवृक्ष है, यह वृक्ष-मूल है, यह मूलोच्छेदन है और यह है कुल्हाड़ा। यह दुर्भिक्ष है, यह दुर्वृष्टि है, यह सुभिक्ष है और यह सुवृष्टि। यह उरला तीर है, यह बीचकी नदिया है, यह परला तीर है और यह है पार होनेकी नौका। यह कुफल है, यह कुबीज है, यह सुफल है और यह है सुबीज। यह दुर्गति है, यह दुर्मार्ग है, यह लोक-चक्र है, यह लोक-चक्रकी गति है, यह उस गतिका निरोध है और यह है गति निरोध कर देनेवाला धर्म-चक्र।

वस्तुतः लोकचक्र ही दुःख है, रोग है, बंधन है, मैल है, आग है, भय है दुष्फल है, दुर्गति है और धर्मचक्र ही सुख है, स्वस्थता है, शांति है, मुक्ति है, निर्मलता है, योगक्षेम है, सुफल है, सुगति है। चारों आर्य-सत्योंको देख समझ लेना धर्मचक्र है और न देखना-समझना ही लोक-चक्र।

साधारणतया हम दुखके सत्य स्वरूपको नहीं देख समझ पाते। इसीसे उसमें उलझे रहते हैं, लोकचक्रमें पिसते रहते हैं। जीवनके मोटे-मोटे दुखतो हम खूब समझ लेते हैं, परन्तु सांसरिक सुखोंमें छिपे हुए सूक्ष्म परन्तु तीव्र दुखोंको हम कहाँ समझ पाते हैं? छोटे-बड़े ऐंद्रिय सुख हमें इस कदर लुब्ध रखते हैं कि इनमें भी कोई दुख समाया हुआ है, यह बात हमारी समझमें ही नहीं आती। यदा-कदा आने वाले इन भौतिक सुखोंकी वजहसे हमारे भीतर जो उत्तेजनाएँ उमड़ती रहती हैं और हमारा मानसिक संतुलन बिगड़ता रहता है, उस दुखको हम देख ही नहीं पाते। प्रिय या अप्रिय सभी स्थितियोंमें हमारे भीतर ही भीतर जो गहरी अतृप्ति, असंतुष्टि समायी रहती है उसके दुखको हम समझ ही नहीं पाते। जो कुछ प्राप्त है उसकी सुरक्षा के लिए और जो कुछ अप्राप्य है उसकी प्राप्ति के लिए हमारे अन्तर्मनमें जो निरन्तर बेचैनियाँ बनी रहती हैं, उन्हें हम

देख ही नहीं पाते। इन्हे देख समझ लेना ही अपने सच्चे रोगको पहचान लेना है। यही पहला मंगलकारी सत्य है।

दूसरा मंगलकारी सत्य उस दुखके असली कारणको देख पहचान लेना है। वैयक्तिक, पारवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवनकी विभिन्न अनवांछित घटनाएँ परिस्थितियाँ हमें दुखी बनाती रहती हैं। यह सच है परन्तु यह ऊपरी–ऊपरी सच है। इससे गहरा सच यह है कि भीतर ही भीतर अनजाने हमने अपने मनको एक ऐसे स्वभाव शिकंजेमें जकड़ लिया है जिससे कि वह अप्राप्यको प्राप्य करनेके लिए सदा लालायित रहता है। उत्तप्त रहता है। जो कुछ है उससे इसे संतुष्टि नहीं, तृप्ति नहीं। जो नहीं है उसके लिए छटपटाहट है। अतृप्ति और असंतुष्टिकी यह छटपटाहट ही दुख है। यह जान लेने पर यह भी स्पष्ट समझमें आ जाता है कि सदा सतृष्ण रहनेवाला हमारा यह आंतरिक स्वभाव ही इसका मूल कारण है। इच्छाकी पूर्ति हो जाने पर भी तृष्णा बनी रहती है। एक इच्छा पूरी हुई कि दूसरीके प्रति तृष्णा जागी। जब तक तृष्णा बनी रहती है तथा उस तृष्णाके प्रति गहरी आसक्ति बनी रहती है तब तक दुख बना ही रहता है।

दुखोंके मूलभूत सही कारणको नहीं जाननेकी वजहसे ही दुख–विमुक्तिके सारे उपक्रम व्यर्थ साबित होते हैं। ऐन्द्रिय सुखोंके अभावको ही दुखका कारण मानकर उनके पीछे पागलों की तरह दौड़ लगानेवाला व्यक्ति अधिक दुखोंमें ही उलझता है। किसी सर्वशक्तिमान अदृष्य प्राणीको दुखोंका कारण मानकर उसे खुश करनेके चक्करमें पड़नेवाला व्यक्ति दुखोंमें ही अधिक उलझता है। अतः दुखके सही कारणको जान लेना ही वास्तविक मंगलमयी सच्चाई है।

यह दुख है, यह दुखका कारण है। इन दोनों सच्चाइयोंको जान लेना नितांत आवश्यक है। परन्तु इतना जानकर यदि हम हताश हो बैठे कि यह तो दुनियाका स्वभाव है, यह दुख–चक्र तो सदा चलता ही रहेगा, इसके बाहर कोई निकल नहीं सकता तो इस निराशाके कारण सचमुच दुख–चक्रमें पड़े ही रह जायेंगे। धर्मचक्र दुख और दुखके सही कारणको जानकर उसके निवारणके प्रति आस्था पैदा करता है। जिसका कोई कारण है, उसका निवारण भी है ही। कारणके दूर होते ही परिणाम अपने आप दूर हो जायेगा। आशाओंसे परिपूर्ण यह तीसरी सच्चाई है।

कारणके निवारणसे दुख दूर होगा, यह सच्चाई जान लेनेके बाद उस निवारणका सही उपाय पकड़में आ जाय तो चौथी मंगलकारी सच्चाई पकड़में आ जाय। तीसरी सच्चाईने जो आशा उत्पन्न की थी उसे क्रियान्वित करनेकी विधि पकड़में आ जाय। क्या है यह विधि? यह विधि है शील, समाधि और प्रज्ञा। याने काया और वाणी के दुराचरणसे बचना, चित्तको वशमें रखना और चित्त पर छाए हुए समस्त दूषित विकारोंको दूर कर उसे मैत्री, करुणा आदि सद्गुणोंसे भरना। दुख–निरोधका यही सही उपाय है। हमारे समस्त रोगोंकी यही रामबाण औषधि है। यही वह मार्ग है जिस पर चलकर हम अपने भीतर समाए हुए समस्त दुःखोंकी जननी स्वरूपा इस तृष्णाजन्य आसक्ति को समूल नष्ट करनेमें सर्वथा समर्थ होते हैं। यही मंगलकारी चौथी सच्चाई है।

इन चारों मंगलकारी सच्चाइयोंको जान लेना, चिंतन–मनन द्वारा भलीभांति समझ लेना अच्छा है। क्योंकि जानना समझना ही तो पहला कदम है। परन्तु यदि हम बौद्धिक स्तर पर जानने–समझनेको ही हम सब कुछ मान बैठें तो एक और पागलपनके शिकार हो जायँ। यह तो कोरा बुद्धिविलास ही होगा जो कि हमारे किसी लाभका नहीं। जान–समझकर उसे क्रियान्वित कर लेना ही हमारे मंगलका विधायक है। रोग जान लिया, उसे दूर करनेकी दवा भी जान ली परन्तु उस दवाका सेवन नहीं किया तो यह सारा जानना निरर्थक हुआ।

अतः इन चारों आर्य–सत्योंका सही साक्षात्कार वही करता है जो कि बुद्धिविलासके चक्करसे बाहर निकलता है। अन्यथा तो लोकचक्रमें ही उलझा रहता है। धर्मचक्रसे लाभान्वित नहीं हो पाता। दुखको जानकर उससे मुक्त हो जाना ही धर्मचक्र है। दुखके सही कारणको जानकर उसे जड़से उखाड़ फेंकना ही धर्मचक्र है। दुख–निरोधकी सच्चाईको जानकर यथार्थतः उस स्थितिको प्राप्त कर लेना ही धर्मचक्र है। दुख–निरोधके लिए शील, समाधि और प्रज्ञाकी सरल विधिको जानकर उसका पूरी तरह अभ्यास कर लेना ही धर्मचक्र है। यही मंगल–मूल है। यह न हो तो हम लोक–चक्र ही लोकचक्रमें उलझे रह जायेंगे। दुखचक्र ही दुखचक्रमें पिसते रह जायेंगे। हमारा सौभाग्य है कि हमें यह कल्याणकारी विधि उपलब्ध हुई है। हम इसके अभ्यासके द्वारा लोकचक्रके दुखोंसे बाहर निकलें और धर्मचक्र पर स्थापित होकर अपना कल्याण साधें, अपना मंगल साधें।

मंगल मित्र
स. ना. गो.

साधकोंके उद्गार

जयपुरसे श्री कन्हैयालाल लोढ़ा लिखते हैं, "आपकी कृपासे विपश्यना साधनाके सुफलोंका धीरे–धीरे विशेष लाभ मिलता जा रहा है। अनित्य, अनात्म और दुःखके बोधके प्रभावसे अहंता, ममता, खिन्नता मिटकर शांति, स्वाधीनता तथा प्रसन्नताकी अनुभूति होती है। स्थूल इंद्रिय ज्ञानसे युक्त बौद्धिक क्रीड़ासे मुक्ति मिली है। अब न संदेह होता है, न तर्क उठता है। वस्तुतः धर्म इतना सरल व सीधा है कि इसमें न तो तर्ककी आवश्यकता रह जाती है और न पराधीनता ही। धर्म या सत्यकी प्राप्तिमें मानव मात्र समर्थ व स्वाधीन है। अपने ही प्रमादसे राग–द्वेष करके मानव बंधनमें पड़ा हुआ दुःख भोग रहा है।

"विपश्यना" पत्रिकाके वर्ष १०, अंक ९ में "स्थूलसे सूक्ष्मताकी ओर" लेख अति ही सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण है। इसमें काय, वेदना, चित्त एवं धर्म इन चारों प्रकारकी विपश्यनाओंकी सिद्धिकी आद्योपांत प्रक्रियाके साथ अनित्य, अनात्म एवं दुःख इन तीनों भावनामय प्रज्ञाओंसे भासमान स्थूलता तथा सघनता गलकर निर्वाण/कैवल्य/या शुद्ध अवस्था किस प्रकार प्राप्त हो जाती है, इसे अति संक्षेपमें सरल एवं सुन्दररूपमें प्रस्तुत कर दिया है।...

इस लेखमें पृष्ठ २ के दूसरे कालमके प्रथम अनुच्छेदमें "इन्द्रियातीत परम पद 'निर्वाण' में यथेच्छ रत रहनेमें अभ्यस्थ हो जाता है। ऐसा लिखा गया है।" सो मैं इसका

आशय नही समझ पाया हूँ। कारण निर्वाण अवस्था अभ्याससे अतीत अवस्था है। उसे जो एक बार प्राप्त हो जाता है, वह सदाके लिए हो जाता है। अतः निर्वाण अवस्थामें अभ्यस्थ होना कैसे संभव है? अभ्यास तो साधना अवस्थामें होता है। निर्वाण या सिद्ध अवस्था तो उसका शाश्वत–ध्रुव रूप है। अभ्यासमें आयास या प्रयास अपेक्षित है। निर्वाण अवस्था होने पर फिर आयास या प्रयासकी आवश्यकता ही नहीं रहती। अतः मेरी दृष्टिमें उपर्युक्त वाक्यके स्थान पर "निर्वाण अवस्थाको प्राप्त हो जाता है" इतना ही लिखना पर्याप्त लगता है।

मेरा ऐसा मानना है कि पूज्य गुरूजी आप विपश्यनाके युग–प्रवर्तक भी है। अतः आपकी वाणी भविष्यमें सूत्र व प्रमाणके रूपमें उद्धृत की जायेगी। अतः इसमें कही भी असावधानीसे शिथिलता स्खलना न रह जाय, इसी दृष्टिसे मैने उपर्युक्त सुझाव दिया है। जैसा उपयुक्त व उचित समझें वैसा करें। संभव है मेरी ही समझमें भूल हो। आशा है आप मुझे मेरी इस अनधिकार चेष्ठाके लिए क्षमा करेंगे।.....

उत्तर

तुम्हारा १९ मार्चका पत्र नेपालसे लौटने पर मिला। अब तक उत्तर न लिखवा सका। आज ही थोड़ा समय निकाल पाया हूँ।

"इंद्रियातीत परमपद निर्वाण अवस्थामें यथेच्छ रत रहनेमें अभ्यस्थ हो जाता है।" यह व्याख्या ठीक ही है। साथ–साथ यह भी बिल्कुल सत्य है कि निर्वाण अवस्थामें कोई आयास–प्रयास नहीं होता, अन्यथा वह निर्वाण अवस्था नहीं होगी। प्रत्युत इंद्रिय क्षेत्रकी ही कोई अवस्था होगी। "निर्वाण अवस्थामें यथेच्छ रत रहनेका अभ्यास" निर्वाण अवस्थाकी प्राप्तिके पूर्व किया जाता है। जिस प्रकार अधोगतिकी ओर ले जाने वाले सभी भव कर्म संस्कारोंकी निर्जराका काम इंद्रिय क्षेत्रमें ही किया जाता है और तभी इंद्रियातीत अवस्थाका प्रथम साक्षात्कार होता है। स्रोतापन्न अवस्था प्राप्त होती है। याने साधक मुक्तिके स्रोतमें पड़ता है। वैसे ही तत्पश्चात् इंद्रिय क्षेत्रमें ही विपश्यना द्वारा शेष भव संस्कारोंकी निर्जराका काम होता है तथा स्रोतापन्नके आगे अर्हत तककी अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। साधक जैसे–जैसे इस लक्ष्यकी ओर प्रगति करता है, उसके चित्तमें अधिक निर्मलता आती जाती है; वैसे–वैसे इंद्रियातीत अवस्थामें लंबे समय तक रत रह सकनेका धर्म–संकल्प–बल और क्षमता बढ़ती जाती है। यह धर्म–संकल्प निर्वाणकी ओर आमुख होने पर चंद क्षणों पूर्व ही किया जाता है और इसीके आधार पर संकल्पित अवधि तक निर्वाणिक अवस्था बनी रहती है और तदनन्तरही इंद्रिय क्षेत्रमें पुनरागमन होता है। इसलिए इन दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं है।"

समस्त मंगल कामनाओंके सहित

सत्य नारायण गोयन्का

* *

नागपुर की पुरानी साधिका श्रीमती केसर बेन शाह लिखती हैं .....इस साधना से विकारों की तरंगे देखना आ गया। राग–द्वेष उत्पन्न होते ही किसी को दोष न देते हुए अपने भीतर देखने का तरीका हाथ आया। कई बार राग–द्वेष से छुटकारा पाया जिससे बड़ी शान्ति मिली।

दाहिने पैर की हड्डी बढ़ रही थी। डाक्टरों का इलाज काम न आया। ध्यान में समता आने लगी। जब–जब प्रवाह पैर से गुजरता, बड़ा कष्टदायक होता किन्तु धीरे–धीरे दर्द गायब हो गया।

अपने सितम्बर मास के स्वयं–शिविर के अपने हाल के अनुभव बताती हूँ, सिर के सेन्टर में कोई शक्ति गोल–गोल घूमकर मानो छेद रही हो। ऐसा दो–एक दिन लगा। उसके बाद गाढ़ा प्रवाह उसमें से गुजरता और रीढ की हड्डी से गुजरता हुआ मूलाधार तक पहुंचता था। असह्य गरमी पैदा हुई। समता जारी थी। आसन, पीठ, कमर में जलन होने लगी, यहां तक कि दस्त बिल्कुल काला आने लगा। दो दिन के बाद शरीर के भीतर तरंगों की बहुत उलट–पुलट हुई। बड़ा तूफान अनुभव हुआ। उस समय मैं अकेली थी। मार्ग–दर्शन के लिए कोई नहीं था। मैं समता में रही। मरण के लिए भी तैयार थी। किन्तु धर्म ने और ही काम किया। कोर्स पूरा होते ही नागपुर घर गई। मुझे यह देखना था कि जलन शारीरिक थी या साधना में उठे विकारों की। पेशाव व दस्त की जांच करवाई। कोई रोग न निकला। आश्चर्य की बात यह थी कि मुझे एसिडिटी का रोग था वह बिल्कुल समाप्त हो गया। पेट में बडी शान्ति मिली।... दूसरी विशेष बात यह हुई कि पन्द्रह महिने पहले पति का वियोग हुआ और उनके मोह वश दुखी रहती थी। एकाएक मानो दुःख की ग्रंथि छिद गई और दुःख पूर्णतया जाता रहा। पति का फोटो देखा मानो कोई चित्र देख रही हूँ। कोई राग–द्वेष का विकार नहीं जागा। ता. २२–१०–८१ को बड़ी बहिन की मृत्यु हुई। व्यावहारीक बात चीत हुई किन्तु भीतर कोई राग–द्वेष ही न पाया। फिर से खोई हुई स्फूर्ति लौट आई। अब बड़ी शांति महसूस होती है। धन्य है विपश्यना विधि को, जो इस जन्म में मिली! धन्य है गुरुजी को जिन्होंने दुःख से निकलने का मार्ग बतलाया!

महासति पट्ठान सुत्त

१६ से २३ दिसम्बर १९८१ तक कुछ चुने हुए पुराने साधकों के बोधार्थ गुरुदेव गोयन्काजी भगवान बुद्ध के विपश्यना सम्बन्धी दिए गए प्रसिद्ध उपदेश "महासतिपट्ठान सुत्त" की व्याख्या करेंगे। इन साधकों को शिविर क्रमांक २०४ (५ से १६ दिसम्बर ८१) में सम्मिलित होना अनिवार्य होगा। जो पुराने साधक इसका लाभ लेना चाहे वे कृपया विद्यापीठ के व्यवस्थापक से पत्राचार करें।

धर्म यात्रा

१२ से २४ फरवारी १९८२ तक गुरुदेव एवं माताजी बोधगया, सारनाथ, श्रावस्ती, कुशीनगर एवं लुम्बिनी पुण्य स्थानों की यात्रा करेंगे। थोड़े से चुने हुए पुराने साधक इस धर्म यात्रा में सम्मिलित हो सकेंगे। इच्छुक व्यक्ति विद्यापीठ के व्यवस्थापक से शीघ्र सम्पर्क करें।

सामूहिक साधना

श्री. हिमांशु रतिलाल महेता
ए–१९ शिवसागर अपार्टमेंट्स, एस. वी. रोड,
बोरीवली (पश्चिम) बम्बई–८२

अपने स्थान पर विपश्यनाके साधकों को सामूहिक साधना के लिए आमंत्रित करते हैं। इसमें रुचि रखनेवाले व्यक्ति उनसे शीघ्र सम्पर्क करें।

भावी कार्यक्रम

शिविर क्रमांक २०४	★ इगतपुरी	दि. ५-१२-८१ से १६-१२-८१ तक (हिन्दी)
'सति पट्ठान' की व्याख्या	,,	दि. १६-१२-८१ से २३-१२-८१ (कुछ पुराने साधकों के लिए)
शिविर क्रमांक २०५	,,	दि. २३-१२-८१ से ३-१-८२ ,, (अंग्रेजी)
आचार्य-स्वयं-शिविर	,,	दि. ५- १-८२ से २०-१-८२ तक (प्रतिबंधित)

(विशेष - इस स्वयं शिविरके दौरान विद्यापीठ पूरी तरह बंद रहेगी और कोई भी व्यक्ति आचार्यसे नहीं मिल सकेगा)

शिविर क्रमांक २०६	★ इगतपुरी	दि. २०-१-८२ से ३१-१-८२ तक (हिन्दी)
,, ,, २०७	,,	,, ३१-१-८२ से १०-२-८२ तक (अंग्रेजी)

धर्म यात्रा की सुविधा के लिए इस शिविर की तारीखें बदल दी गई हैं। साधक कृपया ध्यान दें।

★ संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी-७६

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। **किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।** २) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी-प्रवचन सुनने लिए हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है।
३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

फोन : २२३३६८

श्री. एम. जे. स्वामी
एडवोकेट
८८३/१, तिलक रोड, हैदराबाद-५०० ००१.
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

दुख कारण समझ्यो नहीं, बढग्यो दुक्ख अनंत।
ज्यूं ही कारण समझियो, कर्‌यो निवारण संत॥
कारण सूं खिपक्यो र वै, चावै दुक्ख न होय।
डुबकी मारे कीच में, तन उजलो किमि होय?
समझ दुखां रै मूल नै, खोय सके तो खोय।
रोग्रां धोयां बावला! दुक्ख दूर ना होय॥
मन की मिटी न बासना, मन का मिट्या न खोड़।
कुण बिरमाजी तारसी? झूठी आसा छोड़॥
मनकी मिटज्या बासना, मनका मिटज्या खोड़।
तो तर ज्यावै आप ही, आस परायी छोड़॥
लोक-चक्र नै त्याग दे, धर्म-चक्र ले धार।
लोक-चक्र रै कारणे, भोगै दुक्ख अपार॥

ग्राम-प्रेमकेबल - फोन : ४०३५७/४४५४७

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं. लि.,
१४/१५ F, कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली-११० ००१.
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दोहे धर्म के

आओ मानव मानवी, धर्म-चक्र अपनायँ।
जिससे सारी गंदगी, मन पर की कट जाय॥
शोक-तप्त व्याकुळ रहे, मूरख मूढ़ अजान।
लोक-चक्र उलझे नहीं, पंडित धीर सुजान॥
हर हरकतकी मूल में, कारण सच्चा देख।
बिन कारण संसारमें, पत्ता हिले न एक॥
नन्हीं सी तृष्णा जगी, बनी गहन आसक्ति।
जब तक मन आसक्त है, कहाँ दुखों से मुक्ति॥
चित्त मैल त्यागे नहीं, करे ईश की आश।
यही मोह, यह मूढ़ता, यह बंधन, यह पाश॥
निज करनी सुधरी नहीं, करी परायी आश।
धर्म-चक्र छूटा, बंधा लोक-चक्र के पाश॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई-२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/- ● वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

विपश्यना"

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To